IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

न्यायः एक राजनीतिक अवधारणा

गोवर्धन लाल सैनी

महाराजा सूरजमल ब्रज विष्वविद्यालय, भरतपुर

शोध सारांश

न्याय की संकल्पना प्राचीन काल से ही राजनीतिक चिंतन का महत्वपूर्ण विषय रही है। पष्चिमी परम्परा के अन्तर्गत न्याय के स्वरूप की व्याख्या के लिए मुख्यतः न्यायपरक व्यक्ति अर्थात सच्चरित्र मनुष्य के गुणों पर विचार किया गया था। भारतीय परम्परा में मनुष्य के कर्म प्रमुखता दी जाती थी। इन दोनों परम्पराओं के साथ यह मान्यता जुड़ी हुई थी। यदि सब व्यक्ति अपने–अपने कर्तव्य का पालन करेंगे तो समाज व्यवस्था अपने आप न्यायपूर्ण होगी।

न्याय का अर्थ ' न्याय को अंग्रेजी में जसटिस कहते हैं। यह शब्द लैटिन शब्दों 'जंगरि 'जस' से निकला है जिसका अर्थ है 'जोड़ना', 'बांधना' 'एक साथ करना। अतः न्याय वह तत्व है जो जोड़ता है, बांधता है, एक साथ रखता है– व्यक्तियों को व्यक्तियों के साथ समूहों को समूह के साथ– ताकि कोई व्यवस्था सी बनायी जा सके। बार्कर ने ठीक कहा है कि ''न्याय का काम है भिन्न राजनीतिक मूल्यों को एक–दूसरे के साथ जोड़ना, एक–दूसरे में विलिन करना।'' वह कहता है कि न्याय राजनीतिक मूल्यों को एक–दूसरे के साथ मिलाता है। उनका संष्लेषण करता है– इन सबकों एक एकीकृत सम्पूर्णता में एकत्रित करता है।

मुख्य शब्द – न्याय, राजनीतिक मूल्य, प्रथा, रीति–रिवाज, परम्परा, संगठन, विधान।

न्याय : ऐतिहासिक रूपरेखा – मानव के राजनीतिक चिन्तन की विपुल साहित्य राषि में से सार रूप में न्याय के तीन प्रकार के सिद्धान्त सामने आते हैं –

1. **अनुग्रह पर आधारित न्याय** – यह उन समाजों की विषेषता है जो रीति–रिवाज, परम्परा तथा धर्म पर आधारित होते हैं। ऐसे समाजों में परिवर्तन की गति धीमी होती है। ऐसे समाजों में प्राचीन प्रथाओं, धर्माचार्यों अथवा विधान निर्माताओं के आदेष द्वारा अधिकार और दायित्व पवित्र रूप ले

लेते हैं। न्याय की इस घटना के उदाहरण है – वर्णाश्रम धर्म पर आधारित नियम, शरीयत पर आधारित नियम यहूदी न्याय संहिता।

2. **बाजार अधिकार पर आधारित न्याय** – न्याय की इस धारणा के प्रमुख प्रतिपादक हाब्स, लोक तथा ऐडम स्मिथ है। इस परंपरा में किसी गुण के पुरस्कार के रूप में न्याय की परिकल्पना की गई है। किसी व्यक्ति, समूह का महत्व इस तथ्य पर आधारित है कि उसका बाजार में क्या मूल्य है। समाज का काम यह सुनिष्चित करना है कि यह व्यवस्था चलती रहे। राज्य का काम इस व्यवस्था को लागू करना है।
3. **मानवीय आवश्यकता पर आधारित न्याय** – यह सिद्धान्त इस विचार का प्रतिपादन करता है कि अपेक्षाकृत अधिक सफल लोगों को उनकी आवष्यकता से अधिक कुछ देने के पूर्व प्रत्येक व्यक्ति को उसकी न्यूनतम आवष्यकता की पूर्ति की दृष्टि से धन का आवंटन किया जाना चाहिए।

न्याय धारणा के विविध रूप –

1. **नैतिक न्याय** – यह इस धारणा पर आधारित है कि विष्व में कुछ सर्वव्यापक, अपरिवर्तनीय तथा अन्तिम प्राकृतिक नियम है जो कि व्यक्तियों के आपसी संबंधों को ठीक प्रकार से संचालित करते है। नैतिक न्याय के अन्तर्गत जिन बातों को शामिल किया जा सकता है उनमें से कुछ है– सत्य बोलना, प्राणी मात्र के प्रति दयाभाव रखना, प्रतिज्ञा पूरी करना, उदारता और दान का परिचय देना।
2. **कानूनी न्याय** – कानूनी न्याय में वे सभी नियम और कानूनी व्यवहार सम्मिलित है, जिनका अनुसरण किया जाना चाहिए। इस प्रकार कानूनी न्याय की धारणा को दो अर्थों में प्रयोग की जाती है। 1. कानूनों का निर्माण अर्थात् सरकार द्वारा बनाये गये कानून न्यायोचित होने चाहिए। 2. कानूनों को लागू करना अर्थात् बनाये गये कानूनों को न्यायोचित ढंग से लागू किया जाना चाहिए।
3. **राजनीति न्याय** – राजनीतिक व्यवस्था का प्रभाव समाज के सभी सदस्यों पर पड़ता है। अतः सभी व्यक्तियों को यह अवसर प्राप्त होना चाहिए कि वे राजनीतिक व्यवस्था को समान रूप से प्रभावित कर सके। राजनीतिक न्याय की प्राप्ति के अन्य साधन है – वयस्क मताधिकार, सभी व्यक्तियों के लिए विचार, भाषण, सम्मेलन, संगठन आदि की नागरिक स्वतंत्रताएं बिना किसी भेदभाव के सभी व्यक्तियों को सार्वजनिक पद प्राप्त होना।
4. **सामाजिक न्याय** – सामाजिक न्याय का अर्थ है कि नागरिक के मध्य सामाजिक स्थिति के आधार पर किसी प्रकार का भेद नहीं किया जाए। सामाजिक न्याय की धारणा में यह बात निहित है कि अच्छे जीवन के लिए आवष्यक परिस्थितियां व्यक्ति को प्राप्त होनी चाहिए और इस सन्दर्भ में समाज राजनीतिक सत्ता से यह अपेक्षा करता है कि वह अपने विधायी तथा प्रषासनिक कार्यक्रमों द्वारा एक ऐसे समाज की स्थापना करेगा, जो समानता पर आधारित हो।

5. **आर्थिक न्याय** – कुछ लोग आर्थिक न्याय का तात्पर्य पूर्ण आर्थिक समानता से लेते हैं, किन्तु इस प्रकार की स्थिति व्यवहा रके अन्तर्गत किसी भी रूप में संभव नहीं है। आर्थिक न्याय का तात्पर्य यह है कि सम्पत्ति सम्बंधी भेद इतना अधिक नहीं होना चाहिए कि धन सम्पदा के आधार पर व्यक्ति–व्यक्ति के बीच विभेद की कोई दीवार खड़ी हो जाए।

भारतीय संविधान में राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक न्याय की व्यवस्था –

भारतीय संविधान में न्याय के आदर्ष की वही भूमिका है, जो मन्दिर में मंगल कलष की होती है। संविधान निर्माताओं के द्वारा इस तथ्य को समझ लिया गया कि सच्चे लोकतंत्र के लिए स्वतंत्रता और समानता की ही नहीं, वरन् न्याय की भी आवष्यकता है और संविधान के अनुच्छेउद 19 के द्वारा नागरिकों को 6 प्रकार की स्वतंत्रताएं प्रदान की गई है। संविधान के तीसरे भाग (मौलिक अधिकार) और चौथे भाग (राज्य की नीति के निदेषक तत्व में सामाजिक–न्याय की प्राप्ति के लिए विविध उपायों का उल्लेख किया गया है। अनुच्छेद 14 में भारत के सभी नागरिकों को कानून के समक्ष समानता और कानून से समान सुरक्षा प्रदान की गई है।

अनुच्छेद 15 में धर्म, मूलवंष, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव की मनाही की गई है।

अनुच्छेद 16 के द्वारा राज्य के अधीन पदों पर नियुक्ति के सम्बंध में सब नागरिकों को अवसर की समानता प्राप्त है।

अनुच्छेद 17 द्वारा छुआछूत का तथा अनुच्छेद 23 व 24 द्वारा बेगार व शोषण का अन्त कर दिया गया है।

संविधान के नीति निदेषक तत्वों के अन्तर्गत अनुच्छेद 41 से 47 तक जो विविध व्यवस्थाएं की गई है उनका लक्ष्य सकारात्मक रूप में सभी नागरिकों को सामाजिक न्याय प्रदान करना है। अनुच्छेद 41 में नागरिकों का कुछ अवस्थाओं में काम, षिक्षा और लोक सहायता पादे का अधिकार स्वीकार किया गया है, अनुच्छेद 42 राज्य को जिम्मेदारी सौंपता है कि वह काम की उचित दषाएँ बनाए रखने का प्रत्यन करेगा। अनुच्छेद 43 श्रमिकों के लिए निर्वाह योग्य मजदूरी का प्रबन्ध करता हे। अनुच्छे 44 नागरिकों के लिए समान आचार संहिता का उल्लेख करता है। अनुच्छे 45 बालकों के लिए निःषुल्क और अनिवार्य षिक्षा की व्यवस्था करता है। अनुच्छे 46 में अनुसूचित जाति तथा अन्य सभी दुर्बल वर्गों के लिए षिक्षा और आर्थिक उन्नति और अनुच्छेद 47 में सामान्य जनता के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने की बात कही गयी है।

न्याय के सम्बंध में विभिन्न विचारकों के विचार –

प्लेटो के विचार – प्लेटों ने न्याय की स्थापना के उद्देष्य से नागरिकों के कर्तव्यों पर बल दिया है। उसने नागरिकों के तीन वर्ग बताए – दार्षनिक वर्ग, सैनिक वर्ग और उत्पादक वर्ग। उसने यह तर्क दिया कि जब तीनों वर्ग निष्ठापूर्वक अपने–अपने कर्तव्य का पालन करेंगे तक राज्य की व्यवस्था अपने आप न्यायपूर्ण होगी।

प्लेटों के अनुसार मनुष्य के व्यवहार के तीन मुख्य स्रोत है – 1. इच्छा या तृष्णा 2. भावना या मनोवेग और 3. ज्ञान या चिंतन। वैसे तो ये सभी गुण सभी मनुष्यों में पाये जाते हैं परन्तु किसी में किसी गुण की प्रधानता रहती है तथा किसी में और गुण की। इस आधार पर प्लेटों ने समाज के तीन वर्गों की पहचान की है जिनमें इच्छा या तृष्णा की प्रधानता है, वे उद्योग व्यापार को तत्पर होते है, जिनमें भावना की प्रधानता होती है, वे सैनिक या योद्धा का व्यवसाय अपनाते है, जो ज्ञान से सम्पन्न है वे दार्षनिक के रूप में ख्याति अर्जित करते हैं।

अरस्तू के विचार – अरस्तू राज्य के लिए न्याय को महत्वपूर्ण मानता है। अरस्तू ने न्याय के दो भेद माने हैं। 1. वितरणात्मक राजनीतिक न्याय 2. सुधारक न्याय। वितरणात्मक न्याय का सिद्धान्त यह है कि राजनीतिक पदों की पूर्ति नागरिकों की योग्यता और उनके द्वारा राज्य के प्रति की गई सेवा के अनुसार हो। सुधारक न्याय का तात्पर्य है कि एक नागरिक के दूसरे नागरिक के साथ सम्बंध को निर्धारित करते हुए सामाजिक जीवन को व्यवस्थित रखा जाए।

ऑगस्टाइन – न्याय को ईष्वरीय राज्य का सर्वप्रथम तत्व मानता है। उनका कहना है कि "जिन राज्यों में न्याय नहीं रह जाता वे डाकुओं के झुण्ड मात्र कहे जा सकते हैं।" उसके द्वारा परिवार, लौकिक राज्य और ईष्वरीय राज्य के संदर्भ में न्याय की विवेचना की गई है और अन्तिम रूप में न्याय से उसका आषय व्यक्ति द्वारा ईष्वरीय राज्य के प्रति कर्तव्य पालन से है।

थॉमस एक्वीनास कानून और न्याय को परस्पर सम्बन्धित मानते हुए न्याय की विवेचना करता है। न्याय के सम्बंध में एक्विनास प्रधान रूप से रोमन विधिषास्त्रियों के मत का अनुकरण करते हुए कहता है कि ''यह प्रत्येक व्यक्ति को उसके अपने अधिकार देने की निष्चित और सनातन इच्छा है।" किन्तु इस सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए यह मान लिया गया है कि न्याय का मौलिक तत्व समानता है।"

भारतीय राजनीतिक चिन्तन में न्याय– भारत के प्राचीन राजनीतिक चिन्तन में न्याय को बहुत अधिका महत्व दिया गया है और मनु, कौटिल्य, बृहस्पति, शुक्र, भारद्वाज तथा सोमदेव आदि सभी के द्वारा राज्य की व्यवस्था में न्याय को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

मनु की दूरदृष्टि इस बात में है कि उन्होंने प्राचीन युग में भी विवादों की वे दो श्रेणियां बतला दी थी जिन्हें आज दीवानी और फौजदारी की संज्ञा दी जाती है। मनु ने न्याय की निष्पक्षता और सत्यता पर अधिक बल दिया है। एक स्थान पर वे लिखते हैं "जिस सभा (न्यायालय) में सत्य असत्य से पीड़ित होता है उसके सदस्य ही पाप से नष्ट हो जाते हैं।"

कौटिल्य समुचित न्याय प्रणाली को राज्य का प्राण समझता है और उसका विचार है कि जो राज्य अपनी प्रजा को न्याय प्रदान नहीं कर सकता वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। उसके अनुसार न्याय का उद्देष्य प्रजा के जीवन तथा सम्पत्ति की रक्षा करना तथा असामाजिक तत्वों एवं अव्यवस्था उत्पन्न करने वाले व्यक्तियों को दण्डित करना है। कौटिल्य अपने अर्थषास्त्र में दो प्रकार के न्यायालयों का उल्लेख करता है धर्मस्थीय तथा कण्टक शोधन, जिन्हें वर्तमान समय के दीवानी तथा फौजदारी न्यायालयों के लगभग समान कहा जा सकता है। उसके द्वारा न्यायिक संगठन और प्रक्रिया का भी विषद् वर्णन किया गया है।

सन्दर्भ ग्रंथ –

1. गाबा, ओ.पी. – राजनीतिक सिद्धान्त की रूपरेखा, पृ. 5.11
2. अरोड़ा, एन.डी. – राजनीति विज्ञान, पृ. 5–11
3. सिन्धु, ज्ञान सिंह – राजनीतिक सिद्धान्त, पृ. 276
4. फड़िया, जैन – आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त, पृ. 285